THE TIMES OF INDIA

Date: 01-11-17

A big bang

India's jump in ease of doing business ranking should catalyse more reforms

TOI Editorials

India's performance in the World Bank's annual ease of doing business global ranking has shown remarkable improvement, which deserves to be celebrated. It jumped 30 places this year, ranking now at 100th among 190 countries studied. India also figured in the list of top 10 improvers. The annual ranking provides an important summary of the complexity of interaction between government and entrepreneurs, particularly smaller businesses. Therefore, an improvement represents progress in the goal of creating a better economic environment. On this count, the Narendra Modi government deserves credit for its single minded pursuit of easing business environment.Of the 10 indicators used in the ranking, India's performance has been most impressive in protection of minority shareholders. It ranks fourth in the world following important changes in the law governing related party transactions. Other areas where India did well were in getting electricity connections and tax payments. Process changes in these areas have simplified things for small entrepreneurs. An important development in the latest ranking was the absolute improvement in India's score on easing business environment. In other words, India's performance reflected not just an improvement in relation to other countries but was also on account of enhanced scores in relation to its earlier performance.It is important to place this ranking in perspective to keep on improving. The World Bank study is confined to India's largest cities, Mumbai and Delhi. Moreover, doing business indicators are based primarily on laws and regulations. About two-third of the data embedded in the indicators are based on a reading of the law. In this context, it is important for governments to ensure bureaucracy not only understands the spirit underlying the law but is also willing to implement it correctly. On balance, India's improvement is a big positive and should inspire all states to follow suit.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 01-11-17

सीमित निष्कर्ष

संपादकीय

विश्व बैंक की वर्ष 2018 की कारोबारी सुगमता संबंधी वैश्विक रैंकिंग में बहुप्रतीक्षित अच्छी खबर छिपी है। भारत 30 स्थान की उछाल के साथ अब 100वें स्थान पर आ गया है। वह उन 10 देशों में शामिल है जिन्होंने सबसे ज्यादा सुधार किया है। यह प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सरकार के लिए खुशखबरी है। सरकार ने इस सूचकांक के शीर्ष 50 में शामिल होने का लक्ष्य तय किया हुआ है। गत वर्ष अपेक्षाकृत धीमी शुरुआत के बाद हमने महज एक स्थान का सुधार किया था। लेकिन अब शायद सरकार की कोशिशें रंग ला रही हैं। यह बात

ध्यान देने लायक है कि ऐसे सूचकांक, खासतौर पर इस सूचकांक की चाहे जो भी सीमा हो, लेकिन वे वैश्विक निवेशकों के निर्णय को प्रभावित करते हैं। इसलिए सरकार का भारत की रैंकिंग सुधारने पर ध्यान देने का निर्णय उचित है। इसके सकारात्मक परिणाम भी नजर आ रहे हैं।विश्व बैंक के मुताबिक करों का ऑनलाइन भुगतान आसान होना, किसी निर्माण अनुमति के लिए भवन योजना को पहले जमा करने की संभावना, पैन और टैन (स्थायी खाता संख्या और कर खाता संख्या) के साथ एक नया कारोबारी ढांचा और भविष्य निधि और सरकारी बीमा निस्तारण के लिए लगने वाले समय में कमी भारत के प्रदर्शन में इस सुधार की सबसे बड़ी वजह हैं। विश्व बैंक की रिपोर्ट में दिवालिया कानून के प्रवर्तन का भी जिक्र किया गया है। इसके अलावा मुंबई में न्हावा शेवा बंदरगाह में बुनियादी सुविधाओं को उन्नत बनाए जाने का भी इसमें उल्लेख है। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि कुछ आयातक फिलहाल वस्तुओं के लिए ऑनलाइन मंचों का लाभ ले सकते हैं। हालांकि इस बीच कई ऐसी बातें हैं जिनको लेकर सतर्क रहने की आवश्यकता है। विश्व बैंक का कारोबारी सूचकांक अतीत में आलोचना का पात्र रहा है क्योंकि इसका ध्यान बहुत सीमित क्षेत्रों पर रहता है। इसके मूल्यांकन में विशेषज्ञों का साक्षात्कार, दिल्ली और मुंबई में कारोबार संबंधी विशिष्टï कठिनाइयां शामिल हैं। अन्य पहलू मसलन कर और दिवालिया कानून का भी परीक्षण किया गया है। भारत ने अल्पांश हिस्सेदारी रखने वालों के हित में पहले भी मजबूत उपाय कर रखे हैं लेकिन सूचकांक के अन्य पहलुओं पर काम करना जरूरी है। देश के दोनों बड़े शहरों दिल्ली और मुंबई में बिजली का कनेक्शन लेने में जो कागजी कार्रवाई होती रही है उसमें भी हाल के वर्षों में सुधार देखने को मिले हैं।

यह बात ध्यान देने लायक है कि ये सुधार तो अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन अभी काफी कुछ किया जाना बाकी है। निश्चित रूप से कर अनुपालन और भुगतान करना आसान होने की बात लोगों को चकित करेगी क्योंकि जीएसटी के क्रियान्वयन और उसकी दिक्कतों को लेकर कई तरह के असंतोष हैं। इसमें बदलाव भी हो रहे हैं। विश्व बैंक की रैंकिंग में जीएसटी को शामिल नहीं किया गया है क्योंकि यह आकलन अवधि में लागू ही नहीं हुआ था। बहरहाल, यह एक उदाहरण है जो बताता है कि किस तरह यह रैंकिंग वास्तविक आंकड़ों से अलहदा है। नीति आयोग का भारतीय राज्यों में कारोबारी सुगमता संबंधी अपना अनुमान हाल ही में जारी हुआ था। वह बताता है कि देश के अलग-अलग राज्यों में इस संबंध में कितना अंतर है और भारतीय कारोबारों को किस तरह की कारोबारी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।सरकार को विश्व बैंक की रैंकिंग में सुधार पर काम करने का श्रेय मिलना चाहिए परंतु विश्व बैंक स्वयं कह चुका है कि रैंकिंग का आकलन करते वक्त सभी कारोबारी पहलुओं का ध्यान नहीं रखा गया है। ऐसे में एक ओर जहां यह रैंकिंग उचित दृष्टिï प्रदान करती है वहीं काफी संभावना है कि यह जमीनी हकीकत से दूर भी हो।

Date: 01-11-17

क्राउड फंडिंग, कृत्रिम बुद्घिमत्ता और मशीन

दीपक लाल

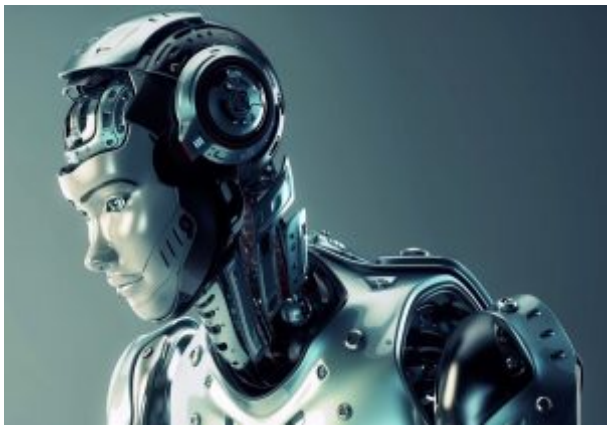

डिजिटल क्रांति ने एक तरफ हमें तरह-तरह के फायदे पहुंचाए हैं, वहीं उसका एक चेहरा डरावना भी है। कृत्रिम बुद्घिमत्ता और रोबोट से जुड़े खतरों के बारे में विस्तार से चर्चा कर रहे हैं दीपक लालपिछले आलेख में मैंने गूगल और फेसबुक जैसे मंचों की बात की थी। इस भाग में मैं क्राउडफंडिंग और कृत्रिम बुद्घिमत्ता (आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस यानी एआई) आधारित रोबोट की बात करूंगा।

रोनाल्ड स्ट्रास्ज के एक हालिया पर्चे (अ थिअरी ऑफ क्राउडफंडिंग) से पता चलता है कि किकस्टार्टर जैसी क्राउडफंडिंग वेबसाइट मांग की अनिश्चितता के दौर में आर्थिक किफायत बढ़ाने का काम करती हैं। वे उद्यमियों को किसी उत्पाद के तैयार होने के पहले उपभोक्ताओं से अनुबंध करने का अवसर देकर ऐसा करती हैं। इससे उनके पास अवसर रहता है कि अगर उद्यमी संभावित निवेश न भी करे तो भी वे अपने उत्पाद को तैयार कर सकें। यह उपभोक्ताओं को भी यह प्रोत्साहन देती है कि वे अपनी मांग जाहिर करें। किकस्टार्टर की प्रक्रिया कुछ ऐसी है कि वह व्यक्तिगत स्तर पर मांग आमंत्रित करती है और इन सभी के लिए लक्षित स्तर की घोषणा करता है। 30 दिनों की अभियान अवधि के दौरान एकत्रित मांगों की घोषणा की जाती है और उपभोक्ताओं को यह

अवसर दिया जाता है कि वे अपने सशर्त निर्णय सामने रख सकें। अगर मांग का स्तर पहले की गई घोषणा से कम होता है तो क्राउडफंडिंग अभियान को नाकाम घोषित कर रद्द कर दिया जाता है। अगर मांग लक्ष्य से ज्यादा हो जाती है तो उपभोक्ताओं से कहा जाता है कि वे इसकी फंडिंग करें। यह राशि उस उद्यमी को दी जाती है जो उक्त परियोजना पर काम करने को तैयार हो। इसके अलावा परियोजना पूरी होने और की गई मांग के निपटने के बाद उसका एक भरापूरा बाजार होता है। लक्ष्य हासिल होने के बाद उपभोक्ता खुले बाजार में उस उत्पाद को खरीदने की उत्सुकता भी दिखा सकते हैं। विलंबित भुगतान की समस्या इसी पश्चवर्ती बाजार में आती है। यही वजह है कि क्राउड फंडिंग के जरिये मांग की अनिश्चितता कम की जाती है और यह पारंपरिक उद्यमिता में मिलने वाली वित्तीय मदद की कमी पूरी करता है। क्राउड फंडिंग पर आधारित यह नवाचार डिजिटल क्रांति के जरिये समाज कल्याण को आगे बढ़ा रहा है।एआई की बात करें तो रोबोट को लेकर तीन चिंताएं हैं। इनमें सबसे पहली चिंता है प्रौद्योगिकी क्षेत्र में बड़े पैमाने पर रोजगार जाना। दूसरी चिंता है कि वे मनुष्य की जगह ले सकती हैं या उसे अपना दास बना सकती हैं। तीसरी चिंता रोबोट से जंग की है।

अगर प्रौद्योगिकी आधारित बेरोजगारी और भारत जैसे श्रमिक बहुल निर्यात वाले देश के अपने जनांकिकीय लाभांश का इस्तेमाल न कर पाने की बात की जाए तो अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धांत इस डर को खारिज करते हैं। जब तक प्रौद्योगिक से बनने वाली वस्तुएं मौजूदा श्रम आधारित तकनीक से बेहतर नहीं होती हैं तब तक रोबोटिक तकनीक को कैसे अपनाया जा सकता है? यह तकनीक ही है जिसकी वजह से पश्चिमी देशों में ऊंची इमारतों पर निर्माण कार्य क्रेनों से होता दिखता है जबकि भारत में श्रमिकों को ऊंची जगहों पर काम करते हुए आसानी से देखा जा सकता है। रिकॉर्डो का तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत इस ओर इशारा करता है कि दुनिया के अन्य देश तमाम चीजें चाहे जितनी कम लागत में तैयार करें लेकिन भारत को उन चीजों के उत्पादन में तुलनात्मक बढ़त हासिल रहेगी जिनका उत्पादन और निर्यात उसके लिए घरेलू स्तर पर किफायती है। यह किफायत श्रम आधारित होगी। अहम बात यह है कि श्रम और पूंजी जैसे कारक आधारित बाजारों में अवसर लागत साफ परिलक्षित होनी चाहिए। इसके लिए श्रम बाजार की विसंगतियां कम करनी होंगी।

जहां तक दुनिया पर रोबोट के काबिज होने की बात है तो कंप्यूटर और इंसानी दिमाग की प्रासंगिकता पर अलग तरह के सवाल हैं। जॉन सर्ले ने सन 1998 में आई अपनी किताब 'द मिस्ट्री ऑफ कॉन्शियसनेस' में इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। मस्तिष्क और शरीर के बीच की समस्या की शुरुआत फ्रांसीसी दार्शनिक देकार्त के वक्तव्य से होती है। वह इन दोनों के द्वंद्व की बात करते हैं लेकिन गिलबर्ट राइल ने इसका विरोध करते हुए कहा कि मन को लेकर देकार्त की दृष्टि मशीन में भूत के समान है। दार्शनिक और वैज्ञानिक अब इस दोहरेपन को मान्यता नहीं देते। मन दिमाग का केवल एक हिस्सा है। बहरहाल कंप्यूटर विज्ञानियों का दावा है कि दिमाग केवल एक डिजिटल कंप्यूटर है और मन उसका एक प्रोग्राम भर है। सर्ले कहते हैं कि मजबूत एआई को कमजोर एआई से अलग करके देखना होगा क्योंकि कमजोर एआई कंप्यूटर को उपयोगी उपकरण मानता है। दिमाग और कंप्यूटर के बीच सबसे बड़ा अंतर यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लॉस एंजिलस के तंत्रिका विज्ञानी जोकिम फस्टर ने तंत्रिका विज्ञान के हालिया विकास क्रम को अपनी किताब 'द न्यूरोसाइंस ऑफ फ्रीडम ऐंड क्रिएटिविटी' में बयां है।

किताब में कहा गया है कि मस्तिष्क एक जटिल संतुलनकारी व्यवस्था है जो अवधारणाओं को लक्षित निर्देश में बदलता है। इसमें प्री फ्रंटल कोर्टेक्स की अहम भूमिका होती है। इनमें से कई कदम निश्चितताओं पर नहीं बल्कि संभावनाओं पर आधारित होते हैं जो विभिन्न कदमों में से किसी एक के चयन की वजह बनते हैं। यह मुक्त सोच को दर्शाने वाली बात है। मस्तिष्क का सेरेब्रल कोर्टेक्स वाला हिस्सा सचेतन ध्यान को भी निर्देशित करता है। यहां चेतना वह स्थिति है जो चीजों को लेकर हमारी जागरूकता और मस्तिष्क की भावनात्मक प्रक्रिया को स्थापित करती है।यहां तक कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर काम कर रहे वैज्ञानिक भी अब यह मानते हैं कि इंसान की जगह रोबोट के इस्तेमाल का उनका स्वप्न इस बड़े प्रश्न पर निर्भर करता हैकि आखिर कोई वस्तु चैतन्य क्यों है? यह सवाल एमआईटी के भौतिक विज्ञानी मैक्स टेगमार्क ने उठाया था। हालांकि मैं मानता हूं कि चेतनाशील रोबोट विकसित हो सकते हैं लेकिन मेरा संदेह बरकरार है। मस्तिष्क एक जीवविज्ञानी अंग है और यह कई तरह के काम कर सकता है। मुझे लगता नहीं कि इसका कोई विकल्प होगा।आखिरी डर थोड़ा अधिक तार्किक है। स्वचालित रोबो हथियारों की होड़ शुरू हो सकती है। हमारे पास पहले ही ड्रोन हैं लेकिन इन्हें चलाने के लिए मनुष्य की जरूरत पड़ती है। परंतु टेगमार्क की रिपोर्ट के मुताबिक अब असली और पूर्ण स्वचालित हथियारों का विकास हो रहा है जो खुद ही निशाना तय करेंगे।कुल मिलाकर डिजिटल क्रांति ने जहां कई तरह के लाभ दिए हैं वहीं इसके साथ कई तरह के आर्थिक और मानवीय भय भी सर उठा रहे हैं। विज्ञापन एजेंसियों और सोशल मीडिया जैसे मंचों तथा स्वचालित हथियारों से जुड़े कई डर सामने आ रहे हैं जिनसे निपटना जरूरी है।

Date: 31-10-17

धुंधलाती तस्वीर

संपादकीय

हमारे देश की अदालतों में मुकदमों के बोझ की वजह से आज इंसाफ की क्या गति है, यह किसी से छिपा नहीं है। ऐसे मामले सामने आते रहते हैं जिनमें फैसला आने में कई बार इतनी देर हो जाती है कि न्याय निरर्थक हो चुका होता है। विधि आयोग की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक देश के पांच शीर्ष न्यायाधिकरणों में करीब साढ़े तीन लाख मामले लंबित हैं, जिनमें से अकेले आयकर अपीली न्यायाधिकरण में इक्यानबे हजार मुकदमे फैसले की बाट जोह रहे हैं। इसके अलावा, केंद्रीय प्रशासनिक **न्यायाधिकरण**, रेलवे दावा न्यायाधिकरण, ऋण वसूली न्यायाधिकरण, सीमाशुल्क, आबकारी और सेवा कर अपील न्यायाधिकरण में भी लंबित शिकायतों की तादाद इस समस्या को जटिल बना रही है। हालांकि रिपोर्ट के मुताबिक इन न्यायाधिकरणों में शिकायतों के निपटारे की दर हर साल दर्ज होने वाले मामलों की तुलना में कमोबेश ठीक है। इसके बावजूद **न्यायाधिकरणों** में न्याय की गति धीमी है, जो इस ओर **ध्यान** दिलाता है कि समूचे न्यायिक तंत्र में कहीं जड़ता का आलम है। खुद विधि आयोग की रिपोर्ट में यह चिंता जताई गई है कि कुछ **न्यायाधिकरणों** के कामकाज के संबंध में आंकड़े संतोषजनक नहीं हैं।अदालतों पर मुकदमों के बोझ के मद्देनजर ही वैकल्पिक उपाय के रूप **में** न्यायाधिकरणों की स्थापना की गई, ताकि न्याय प्रशासन में देरी और लंबित मामलों की समस्या से निपटा जा सके। इसी सिलसिले **में** लोक अदालतों का भी गठन किया गया। लेकिन आज हालत यह है कि इन जगहों पर भी लंबित मामलों की तादाद इतनी ज्यादा हो गई है कि उसका नकारात्मक असर न्याय की अवधारणा पर पड़ रहा है। विधि एवं न्याय मंत्रालय के एक आंकड़े के मुताबिक देश भर की नियमित अदालतों में 2015 तक लंबित मुकदमों की संख्या करीब साढ़े तीन करोड़ थे। दरअसल, न्याय का तंत्र इतना उलझा हुआ है कि बहुत मामूली विवादों पर फैसला आने में भी कई बार पांच या दस साल या फिर इससे ज्यादा वक्त लग जाता है। जेलों में बंद लोगों में से विचाराधीन कैदियों की संख्या दो-तिहाई के आसपास है। विडंबना यह है कि विचाराधीन कैदियों में ऐसे लोग भी हैं, जो अपने **खिलाफ** चल रहे अभियोग की संभावित अधिकतम सजा से ज्यादा समय जेल **में** काट चुके हैं। अदालतों में मुकदमों के बोझ के लिए **न्यायाधीशों** की कमी को सबसे बड़ा कारण बताया जाता है। तमाम न्यायिक पद रिक्त हैं। अदालतों में गरमी की लंबी छुट्टियों को लेकर भी कई बार सवाल उठे हैं। एक बार पूर्व न्यायाधीश राजेंद्रमल लोढ़ा ने यह सुझाव दिया था कि जब अस्पताल साल भर काम करते हैं, तो **न्यायालयों** में ऐसा क्यों नहीं हो सकता है! इससे संबंधित सुझाव कई मौकों पर सामने आ चुके हैं। लेकिन नियमित अदालतों में बढ़ते मुकदमों के अंबार की समस्या के हल के लिए अब तक कोई ठोस पहल नहीं **हुई** और उसके नतीजे सामने हैं। अब न्यायाधिकरणों में भी जिस कदर मामलों का बोझ बढ़ता जा रहा है, उससे अगर समय रहते नहीं निपटा गया तो यह आने वाले वक्त में इंसाफ की तस्वीर को और धुंधला ही करेगा। कहा भी गया है कि न्याय में देरी करना न्याय से इनकार करने के बराबर है।

Date: 31-10-17

धर्म को मजहब न बनाएं

शंकर शरण, [लेखक राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापक एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं]

उज्जैन के महाकाल मंदिर में स्थापित शिवलिंग के साथ पंचकर्म नहीं होगा। उस पर साधारण नहीं, बल्कि आरओ का पानी चढ़ाया जाएगा। ऐसे निर्णय विचित्र हैं। शिवलिंग, मूर्ति या प्रतिमाएं केवल प्रतीक हैं, धर्म चेतना की ओर बढ़ने की सबसे साधारण चीज। उसी को अंतिम मानकर माथापच्ची करना निपट अज्ञान है जिसे यह भी ध्यान नहीं कि ऐसी प्रतिमाएं, प्रतीक तो हिंदू लोग हर साल बनाते और विसर्जित करते रहते हैं। यदि उसी में धर्म निहित रहता तो दुर्गा या गणपति को विसर्जित क्यों करते? ऐसा अज्ञान हमारे देश में धर्म-विहीन शिक्षा के कारण है। वैसे निर्णय धर्म और रिलीजन की भिन्न धारणाओं के घालमेल का भी कुप्रभाव है। जिसे पश्चिमी लोग रिलीजन मानते हैं उसकी सीख केवल विश्वास, अंधविश्वास और कुछ बाह्याचार मात्र है। रिलीजन वाली समझ यह है कि किसी व्यक्ति का आचरण कैसा भी हो, यदि वह एक विशेष ईश्वर, उसके विशेष दूत-पैगंबर और विशेष पवित्र किताब पर विश्वास रखता है तो वह अमुक रिलीजन का हुआ। बहुत से लोग उसी प्रवृत्ति को हिंदू धर्म पर थोप रहे हैं, जबकि हिंदू धर्म में मंदिर जाना, प्रतिमा-पूजन करना आदि असली बात नहीं है। इसीलिए यह सब करते हुए यदि कोई दूषित आचरण में लिप्त हो तो उसे अधर्मी, पापी, त्याज्य, दंडनीय माना जाता है। हिंदुओं के बाह्य धर्माचार को रिलीजियस फेथ में नहीं बदलना चाहिए। नहीं तो धर्म का ह्रास होता जाएगा चाहे मजहबी किस्म का अंधविश्वास बढ़ जाए। उपनिषदों से लेकर स्वामी विवेकानंद तक ने यही और केवल यही शिक्षा दी है। यदि उन शिक्षाओं को आत्मसात करने, तदनुरूप जीवन बना सकने में मंदिर की प्रतिमाएं, प्रतीक सहायता दे सकें तभी और केवल उतनी ही उनकी उपयोगिता है। सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने इस पर लिखा था:

'जिसको हम हिंदू धर्म कहते हैं उसमें जो बुनियादी तत्व है वह यह है कि इसमें इस बात का महत्व नहीं है कि आप क्या मानते हैं, बल्कि आप समाज में कैसे रहते हैं, इसका महत्व है।'धर्म आचरण से जुड़ा है जबकि रिलीजन विश्वास से। धर्म कहता है आपके विश्वास कुछ भी हों, आपका आचरण नीति, मर्यादा, विवेक के अनुरूप होना चाहिए। इसीलिए यहां ऐसी अवधारणाएं हैं जिनके लिए पश्चिमी भाषाओं में कोई शब्द नहीं। जैसे, राज-धर्म, पुत्र-धर्म, क्षात्र-धर्म, आदि। जबकि आचरण से परे यदि आप कुछ निश्चित बातों पर विश्वास करते हैं तो आप ईसाई या मुस्लिम रिलीजन वाले हुए। इसीलिए उनके बीच रिलीजन को 'फेथ' भी कहा जता है। वहां फेथ ही रिलीजन है। अत: उज्जैन में स्थापित शिवलिंग को फेथ वाली दृष्टि से न देखें। सोमनाथ में मुस्लिम आक्रांताओं ने दर्जनों बार शिवलिंग तोड़कर नष्ट किया, किंतु वहां पुन:-पुन: नया शिवलिंग स्थापित कर प्राण-प्रतिष्ठा की गई। अतएव हिंदू पूजा-अर्चना को हृदय और मानस से धर्म-पालन का साधन समझना चाहिए, न कि किसी प्रतीक में अंधविश्वास मात्र। शिवलिंग की वैसी रक्षा करना हास्यास्पद है, जैसे किसी मनुष्य के शरीर को हर हाल में मरने से बचाने की चिंता हो। यह हिंदू धर्म नहीं है। यह तो धर्म को रिलीजन वाली फेथ दृष्टि में बांध देना हुआ।वस्तुत: अंग्रेजी शिक्षा और विकृत सेक्युलरिज्म के सम्मिलित दुष्प्रभाव से हम धर्म से दूर हो रहे हैं। इसके बदले धर्म-हीन होकर फेथ-रिलीजन वाले अर्थ में अंध-विश्वासी बन रहे हैं। तरह-तरह की धोखाधड़ी, पापाचार, आडंबर में लिप्त रहते हुए भी पूजा-पाठ जैसी प्रवृत्ति यही चीज है। यह विकृति हमारे सामाजिक व्यवहार में भी दिखाई पड़ती है।

प्राय: कार्यक्रमों में दीप-प्रज्ज्वलन मोमबत्ती से किया जाता है, जबकि पहले से जलती मोमबत्ती से दीप-प्रज्ज्वलन करना एक मतिहीन अनुष्ठान है। इसी प्रकार यज्ञोपवीत, विवाह जैसे आध्यात्मिक अवसर पर अधिकांश का ध्यान संस्कार पर नहीं, बल्कि उनके फोटो खींचने, खिंचवाने पर रहता है। मानो विवाह किसी थिएटर का ड्रेस-रिहर्सल है जिसमें सप्तपदी को भी फोटो लेने के लिए रोका जाता है। वर माला की आवृत्ति कराई जाती है, क्योंकि फोटो ठीक नहीं आया। वात्स्यायन जी ने इस प्रवृत्ति को 'हिंदू वल्गैरिटी' कहा था। उन्होंने मंदिरों के इर्द-गिर्द आम गंदगी में भी यही देखा था। मंदिरों में चबूतरे आदि पर चंदा देने वालों के नाम खुदवाना, कन्याकुमारी समुद्र में स्वामी विवेकानंद स्मृति में बड़ी प्रतिमा और बिल्डिंग बना देना भी उन्हें फूहड़ लगा था। जिससे 'लोग सामने के विराट को नहीं देखते, केवल जिसने वह विराट देखा था उसकी प्रतिमा बनाकर पूजने बैठ जाते हैं। वह प्रतिमा ही फिर उनकेऔर विराट के बीच दीवार बन जाती है।'यह हिंदू समाज में धर्म का मर्म खोने, और रिलीजियस फेथ वाली आदतें अपनाने के उदाहरण हैं। यहां सेक्युलरिज्म भी रिलीजियस तटस्थता के नाम पर आचरण वाले धर्म से ही दुराव रखता है। अर्थात दो बेमेल चीजों को एक मानकर समान दूरी बरतता है। यही हमारे बच्चों, युवाओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सिखा रहा है। तब परिणाम अंधविश्वास के सिवाय क्या होगा? इस समस्या को आंख मिला कर देखना जरूरी है। यह 'धार्मिकता' नहीं, जो बढ़ रही है। धर्म से दूरी बढ़ने को धार्मिकता कहना एक भ्रम को प्रोत्साहन है। हमारा धर्म यानी धर्म की पहचान, हमारी शिक्षा विकृत हो रही है। समाज में बढ़ता भ्रष्टाचार, पापाचार, आदि उसी का कुफल है। इसी कारण धर्म अर्थात हिंदू धर्म अरक्षित हो रहा है, क्योंकि यह किसी मत-विश्वास पर नहीं, बल्कि सृष्टि मात्र के साथ संबंध पर आधारित है। यही हिंदूधर्म की अद्वितीयता और उसकी सामाजिक दुर्बलता और राजनीतिक कठिनाइयों का आधार भी है।

रिलीजन वाले मतवाद अपने आस-पास बाड़ा बनाते हैं। जो उसके भीतर हैं वे 'अपने' हैं और बाकी सब 'गैर' और प्राय: शत्रु भी माने जाते हैं, लेकिन हिंदू धर्म ऐसे बाड़े नहीं बनाता और किसी को गैर नहीं मानता। इसी से वह अकेला और अरक्षित भी रह जाता है। मत-विश्वास पर संगठित न होने के कारण हिंदू लोग आक्रामक रिलीजन के प्रहार के सामने असहाय हो जाते हैं।जैसे केरल से लेकर गांधार, सिंध, बंगाल, असम के लाखों हिंदू किस्तों में बार-बार होते रहे। जैसे अभी कश्मीर के हिंदू असहाय मारे गए और अपने ही देश में

विस्थापित, शरणार्थी बनने को विवश हुए।भारतीय संविधान में भी धर्म को रिलीजन मान कर रिलीजियस फ्रीडम की व्यवस्था है, किंतु धर्म-रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। इसका घातक फल हुआ कि छल-बल पूर्वक किसी को ईसाई या मुसलमान बना लेने जैसा राजनीतिक कर्म भी रिलीजस कार्य के रूप में स्वीकृत है। इसीलिए ईसाई मिशनरियों द्वारा 'आत्माओं की फसल काटना' कोई गैर-कानूनी मामला नहीं बनता है। उलटे 'सभी धर्मों में एक ही बातें हैं' या 'कोई धर्म हिंसा की सीख नहीं देता' जैसी बातों को यहां प्रचारित किया गया है। दुनिया पर कब्जे की नीति रखने वाले, संगठित रिलीजनों को हिंदू धर्म के बराबर कह कर पिछले सौ साल से भारत को विखंडन के लिए खुला छोड़ दिया गया है। इसकी चिंता हमारे माननीय कभी नहीं करते, जबकि शिवलिंग पर आरओ का पानी चढ़ाने का निर्देश देते हैं। लगता है कि उनके लिए शिवलिंग और ताजमहल में कोई अंतर नहीं है।

THE HINDU

Date: 31-10-17

Hits and misses

Tracking the progress of nations on sustainable development goals

Pradeep Baisakh works with GCAP, a global campaign on poverty and inequality

The meeting of the UN high-level political forum on sustainable ***development***(HLPF) took place in New York from July 10-19 to discuss the progress made on the sustainable development goals (SDGs) of the 2030 Agenda. Forty-three member nations presented their report cards in the form of voluntary national reviews (VNRs). Around 5,000 people participated — half of them from civil society and private entities. Eighty ministers from various countries, holding diverse portfolios such as external affairs, planning and budget, also attended. Before the meeting, the governments undertook long consultations to prepare their reports. Was the exercise worth it?

The reviews show that countries have taken steps to incorporate SDGs in their national plans and policies and identified polices which already include some of the goals. Governments have created new institutions, or have used existing institutions, to facilitate execution of the SDGs. On this count, the HLPF/VNR exercise has yielded results.However, there was significant apathy or antipathy among governments to consult and include suggestions from civil society actors in the VNRs. Except in Europe, and some other countries like Brazil and Japan where governments incorporated the inputs of civil society, the process remained largely non-inclusive or superficial. In India, too, the process was patchy. There was also a visible lack of awareness among civil society actors across the world about the mechanism and processes of VNR. The secretariat for HLPF of the UN Department of Economic and Social Affairs has no place for carrying the shadow reports on SDGs of civil society organisations.

In the VNRs, countries generally outlined how well they have performed. Barring some countries in Latin America and Europe and possibly a few in other regions, stress on critical areas and ways to address them was missing. A survey done in 20 VNR nations by Action for Sustainable Development, a global civil society organisations' platform on SDGs, suggests: "In many cases, although there is a sense that the SDGs are included in existing national plans, the 'transformational' aspect of the agenda has been significantly diluted or lost."The shadow reports prepared by civil society on SDGs find that the scale of inequality is constantly rising while governments' 'austerity' measures of cutting public investment in the social sectors is continuing. There is simultaneously reduction in the corporate taxation. This is worrying as the UN Secretary General's report finds that in 2016, only 45% of the world's population was protected by some social protection system.

A multidimensional poverty index ought to be adopted to analyse domestic poverty conditions as suggested by some nations. A clear road map needed to address pressing challenges of refugee crisis, terrorism, fundamentalism, increasing hunger, inequality and climate change. The HLPF process needs to be strengthened by formalising multi-stakeholder consultations, discussing critical challenges, and making the ministerial declaration mandatory for nations to fulfil.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 31-10-17

Complete the justice

SC verdict is an opportunity to close loopholes in the child marriage act.

Written by Shireen Vakil, The writer has worked in the field of child rights for 20 years and is currently head of policy, Tata Trust.

The recent Supreme Court judgment making sex with a girl between 15 and 18 years even within marriage a criminal offence may have set in motion a series of positive effects for the girl child. In its order, the apex court said that it is removing the distinction between an unmarried and married child because "it is arbitrary, capricious, whimsical and violative of the rights of the girl child and not fair, just and reasonable and, therefore, violative of Article 14, 15 and 21 of the Constitution of India".

The immediate consequence of this order will be for proponents of child marriage who take cover under the garb of "tradition" and "belief"'. They will now face a severe deterrent. It is shocking, that even in 21st century India, child marriage continues to be rampant. At last count, there were 23 million child brides, with approximately 30 per cent of marriages in 2016 being child marriages. With the entrenched patriarchy in our country, a child bride is often bought by old men looking for sexual and domestic servitude. By making it criminal to have sex with child brides the court, we hope, has snatched away one of the primary motives for child marriage.A major consequence of this judgement is also its potential towards reducing India's burden of maternal and infant mortality. There is a close causative link between child marriage and maternal, neo-natal and infant mortality along with stunting and malnutrition. Early marriage generally leads to early pregnancy. Twelve per cent of girls aged 11-19 are already mothers. We

know that a child's body is not adequately prepared for pregnancy or child birth, and risks to both the mother and infant's survival are much higher. In addition, underweight mothers tend to give birth to underweight babies. Nearly 50 per cent of new-born deaths are caused due to complications arising out of low birth weight and premature delivery.

According to the National Family and Health Survey-4 (NFHS-4) nearly 50 per cent pregnant women in the age group 14 to 59 are anaemic. More than half of these women — in the age group 20-24 years — were married before they attained the age of 18 years, and nearly 27 per cent were anaemic. This has severe consequences for both maternal and infant mortality.

States and regions with high incidence of child marriage also show greater prevalence of maternal and infant mortality and morbidity. Madhya Pradesh, for instance, has the worst infant mortality of 47 deaths per 1,000 live births and also tops the list of states for the number of child marriages. Other states that display a similar pattern are Odisha, Assam, Uttar Pradesh, Jharkhand and Rajasthan among others.In its judgment, the Supreme Court acknowledges the link between early marriage and the physical and mental well being of both mother and infant. It says, "the National Plan of Action for Children recognises that the early marriage of girls is one of the factors for neo-natal deaths; early marriage poses various risks for the survival, health and development of young girls and to children born to them and most unfortunately it is also used as a means of trafficking."

Despite laws against child marriage being in place since 1929, and the legal age of marriage being declared as 18 for girls and 21 for boys under the Prohibition of Child Marriage Act, 2006, there are still 23 million child brides in the country. The recent judgment points to severe anomalies within the law which does not, in fact, ban child marriage outright but says that it is voidable at the option of the contracting party who is a child at the time of marriage and void only in certain circumstances. In addition, child marriages continue to be valid under the Hindu Marriage Act, 1955 and Muslim Personal Law. This is a violation of the human rights of children — both boys and girls — with particularly negative consequences for the health, welfare and dignity of the girl child.Child marriage is deeply entrenched in society and cannot be removed by the law alone. A few years ago, a district collector in Rajasthan told me how she got wind of child marriages taking place in a village but before she could stop it, they had actually travelled to another village and got over 50 child marriages conducted en masse.

Now that the apex court has rejected the arguments of the government of India, it is time for us to re-examine the Prohibition of Child Marriage Act and work together to get a definitive position from the government and the legislature to ensure that there is in fact a complete legal ban on child marriage which continues despite efforts such as Beti Bachao, Beti Padhao.